RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-01
January -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

गुप्तोत्तरकालीन सांस्कृतिक विकास

डॉ0 मनोज कुमार देव

नियर–के बी झा कॉलेज, कटिहार

शब्दावली–

सुसंस्कृत – परिष्कृत संस्कार, राजप्रसाद – राजभवन, परिपक्वता – परिपक्व होने की अवस्था, भिक्षु – साधु, सन्यासी

एतिहासिक स्रोतों से यह बात जगजाहिर होती है कि गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी सदी के चौथे दषक में और उत्थान चौथी शताब्दी में जो हुई थी उसमें नाना प्रकार के साथ सांस्कृतिक विकास वाकई तारीफ मानी गई है। सच कहा जाए तो सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्तोत्तरकाल में क्षेत्रीय सांस्कृतिक इकाईयों का अविर्भाव बेहद ही रुचिकर विषेषता है। सांस्कृतिक विकास पर इतिहासकारों का मानना है कि भारत के कोने–कोने में यानी आंध्रप्रदेष, आसाम, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु आदि राज्यों में सांस्कृतिक विकास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचने की कोषिष में थी तभी तो एक जैन ग्रंथ कुवलयमाला में 18 प्रमुख राष्ट्रों और 16 प्रकार के लोगों की नवषात्मक विषिष्टताओं का खुलकर वर्णन किये है जो सांस्कृतिक विकास का सुंदर एवं सतिक उदाहरण है। यह भी गौर करने कर बात है कि शनेः–षनेः संस्कृत के प्रयोगों में क्लिष्टता और कृत्रिमता आती जा रही थी, अपभ्रंश का विकास आद्य–हिन्दी, आद्य–बंगाली, आद्य–गुजराती, आद्य–राजस्थानी, आद्य–मराठी आदि के रुप में हुआ। इस तरह क्षेत्रीय भाषाओं के बीज गुप्तोत्तरकाल में देखने को मिलती है जो सांस्कृतिक विकास का प्रर्याय है। एक सच यह भी है कि अत्यधिक क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों और उनके बीच गिरते हुए संचार संबंधों के चलते क्षेत्रीय भाषाओं के प्रसार का वातावरण और ज्यादा उत्पादक हो गया। सांस्कृतिक विकास की बाते को मैं धार्मिक रीति–रिवाजों में आये परिवर्तन के रुप में दृष्टिगोचर होती है। सांस्कृतिक प्रगति का ही परिणाम था कि भूमि के प्रत्यर्पण एवं स्वामी भाव के जन्म से पूजा तथा भक्ति के स्वरुप को नई दिषा दी गई। पूजा और भक्ति दोनों ही अभिन्न तत्व बन गये। सांस्कृतिक विकास का सबूत भौतिक जरुरतों और दिन–प्रतिदिन की आधि–व्याधियों को दूर करने के जादू–टोनो के उल्लेख तो अथर्ववेद में भी मिलती है। पर शिक्षित ब्राह्मणों और उसके धर्मवान ग्राहकों ने उनको औपचारिकता प्रदान की, उन्हे पोषित किया तथा कुछ तौड़–मरोड़ भी दिया। इतना ही नहीं मध्ययुगीन तांत्रिक ने अब पुरोहित चिकित्सक या ज्योतिषी का रुप ले लिया और सांस्कृतिक विकास की धरोहर बन गई।

प्राचीन भारतीय कला में प्राकुतिक चित्रण, सादगी तथा धाराप्रवाहता थी, किन्तु गुप्तों के सुसंस्कृत और उन्नतिषील युग में कला ने अधिक सुन्दर रूप प्राप्त कर लिया तथा वह अतिग्रहण हो गई। गुप्त कला विशुद्ध भारतीय थी तथा उसमें स्वाभाविकता, यथार्थता, प्राकृतिक सौन्दर्य, आध्यात्मिक एवं धार्मिक आदर्ष, लावण्य और लालित्य का संयमित प्रदर्षन किया गया था। गुप्त कला रूढ़िवादिता से परे थी। गुप्त कला को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है।

गुप्तकाल में वास्तुकला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई। पर्सी ब्राउन ने लिखा है कि भारत की राजनीतिक एकता, शासन की स्थिरता व राजाओं के प्रोत्साहन से ब्राह्मण धर्म का पुनरूत्थान हुआ जिसका सर्वाधिक प्रभाव गुप्तकालीन वास्तुकला पर दृष्टिगत होता है। इस युग की उल्लेखनीय उपलब्धि मन्दिरों को निर्माण किया जाना था। गुप्तकालीन वास्तुकला के नमूनों को निम्नलिखित भागो में विभक्त किया जा सकता हैः–

दुर्भाग्यवश गुप्तकालीन राजप्रासादों में से एक भी सुरक्षित नहीं है। अतः राजप्रासादों के विषय में साहित्यिक ग्रन्थों में किए गए व चित्रकला से ही कुछ प्रकाष पड़ता है। अमरावती व नागार्जुनीकोंडा में राजप्रसादों के चित्रों से पता चलता है कि वहाँ अनेक मंजिलों की भव्य इमारतें थी जिनमें विभिन्न प्रकार की अलंकृत खिड़कियाँ होती थी। राजप्रसादों के कमरे चित्रों से अलंकृत होते थे। वत्वभट्टि नामक विद्वान ने दषपुर नगर के भवनों का वर्णन किया है जिसमें गुप्त राप्रसादों की भव्यता के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। इस विद्वान के अनुसार भवन कैलाष पर्वत के षिखर के समान उँचे तथा विषाल थे और चित्रों से सजे भवनों की शोभा पुर्णेन्दु की किरणों के समान शुभ थी।

प्रस्तर स्तम्भ भी गुप्त वास्तुकला के उत्कृष्ट उदाहरण है। इन स्तम्भों की स्थापना गुप्त–शासकों ने अपनी विजयों की स्मृति अथवा भगवान विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के उद्देष्य से कराई थी। इनमे से अनेक स्तम्भ आज भी विद्यमान है। गुप्तकालीन प्रात्य प्रमुख स्तम्भों में कुमारगुप्त प्रथम के भिलसद में प्राप्त लाल बलुए पत्थर से

RRIJM 2015, All Rights Reserved

निर्मित चार स्तम्भ, स्कन्दगुप्त के भितरी व काहैम स्तम्भ, बुधगुप्तकालीन एरण स्तम्भ, भानुगुप्तकालीन एरण स्तम्भ, आदि है।

गुप्तोत्तर कालीन स्तम्भ प्रमुखतया चार भागों में विभक्त है। –

मुख्य भाग, गलकुम्प, फलका तथा बोधिक। बोधिक पर मूर्ति होती थी। मौर्यकालीन व गुप्तकालीन स्तम्भों में प्रमुख अन्तर यह है कि मौर्यकालीन स्तम्भ गोल, चिकने व चमकदार थे, किन्तु गुप्त–स्तम्भ अनेक कोणों वाले है।

उपरोक्त प्रस्तर–स्तम्भों के अतिरिक्त महरौली स्थित लौह–स्तम्भ भी गुप्तकालीन है। यह स्तम्भ चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा विष्णु ध्वज के रूप में स्थापित कराया गया था। इस लौह स्तम्भ की विद्वानों ने अत्यधिक प्रषंसा की है। उल्लेखनीय है कि हजारों वर्षों से खड़े इस स्तम्भ पर धूप व वर्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

मौर्य काल के समान गुप्तकाल में भी बनेक स्तूनों का निर्माण हुआा। गुप्तकालीन स्तूपों में प्रमुख सारनाथ का धमेख–स्तूप है। यह स्तूप 128 फूट उंचा व गोलाई में 93 फूट है। यह स्तूप, अन्य स्तूपों दके समान, चबूतरे पर नहीं वरन् धरातल पर बना हुआ है। इय स्तूप, का गुम्बद गोलाकार न होकर दण्डाकार है। स्तूप के चारों प्रधान कोनों पर ताख बने है जहाँ सम्भवतः महात्मा बुद्ध की मूर्ती रखी जाती होगी। स्तूप के नीचे के प्रस्तरीय भाग पर रेखागणित की विभिन्न आकृतियां तथा फूल–पत्ती बने है। यह स्तूप षिल्पकारी की दृष्टि से अत्यधिक कलापूर्ण है। गुप्तकालीन एक अन्य स्तूप राजगृह में स्थित है।

गुप्तोत्तर काल में अनेक विहारों का भी निर्माण हुआि, जहां बौद्ध भिक्षु भिक्षुणियां पिवास करते थें तथा उच्च षिक्षा भी प्रदान की जाती थी। ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि गुप्त काल में अनेक विहारों का निर्माण हुआ था। गुप्तकालिन प्रमुख विहार सारनाथ व नालन्दा में थे।

मौर्यकाल से ही गुहाओं का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया था। गुप्तों ने भी अनेक गुहाओं में प्रमुख चन्द्रगुत द्वितीय के सामन्त सनकानिक द्वारा निर्मित उदयगिरि (ग्वालिय) गुहा है। इसी के समीप चन्द्रगुप्त के सेनापति वीरसेन ने भी एक गुहा का निर्माण कराया था। इसमें एक गर्भ–गृह तथा उसके सामने एक मण्डप है। इनके अतिरिक्त अजन्ता की 16, 17 व 19वीं गुहा भी गुप्तकाल की मानी जात है। बाघ गुहाओं का निर्माण भी गुप्तकाल में ही हुआ था।

गुप्तोत्तर कालीन वास्तुकला की सवोत्तम उपलब्धि उस समय मन्दिरों का निर्माण किया जाना था। डॉ0 वासुदेवषरण अग्रवाल ने लिखा है, इस समय सृजनात्मक उत्साह और उसके पीछे प्रचण्ड धार्मिक उदेष्य की जिस लहर ने देष के आप्लवित किया था, उसका सर्वोत्तम रूप वास्तुकीय क्रियाषीलता में देखा जा सकता है, जिसने हिन्दू मन्दिरों को जन्म दिया।

गुप्तोत्तर काल में मन्दिर ईट व पत्थर दोनों ही प्रकार के बने तथा इसमें विभिन्न देवी–देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की गई। गुप्तकाल में बने प्रारम्भिक मन्दिरों की छतें सपाट थी। सर्वप्रथम देवगढ़ के दषावतार–मन्दिर में शिखर का निर्माण हुआ। इसी समय से मंदिरों पर षिखर बनने लगे। मन्दिरों पर बने षिखरों को नागर–षैली अथवा उत्तर शैली कहा जाता है। गुप्तकाल में बने मन्दिरों में भूमरा (नागोध–राज्य) षिव मंदिर, तिगवा (जबलपुर) का विष्णु मंदिर, नचनाकुठारा का पार्वती मंदिर, देवगढ़ का दषावतार मंदिर, खोह का मंदिर, भीतरगांव का मंदिर, सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर, आदि प्रमुख है। गुप्तकालीन मंदिरों में निम्नलिखित उल्लेखनीय विषेषताएं थी :–

- मंदिर ऊँचे चबूतरे पर बनाए जाते थे।
- चबूतरे के चारों ओर सीढ़िया होती थी।
- प्रारम्भिक मंदिरों की छत सपाट किन्तु बाद के मंदिरों में षिखर भी होता था।
- गर्भगृह के सामने एक मण्डप होता था।
- गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ होता था।
- मंदिर के स्तम्भों पर बेल–बूटे, आदि उत्कीर्ण होते थे।

गुप्तोत्तर कालीन मंदिरों में कला के तत्वों को भली–भांती परखा जा सकता है। पर्सी ब्राउन ने गुप्तकालीन देवगढ़ के मंदिर की अत्यधिक प्रषंसा की है। पर्सी ब्राउन के शब्दों में ''पूर्णावस्था में देवगढ़ का दषावतार मंदिर विभिन्न भागों के क्रम की दृष्टि से असाधारण श्रेष्टता रखता था। बहुत कम स्मारकों में देवगढ़ के मंदिर जैसी कारीगरी होती है तथा असकी मूर्तिकला में परिपक्वता और परिष्कृति है।

मूर्ति–कला के क्षेत्र में गुप्त काल के शिल्पियों ने भारत की मूर्तिकला में एक नीवन युग का अविर्भाव किया। गुप्त कला को जो उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। उसमें मूर्तिकला का सर्वाधिक योगदान है। कुषल षिल्पी की छेनी के आधात से मानों पाषाण मुलायम मिट्टी बनकर चितरंजन सौन्दर्य और लावण्य की विषयालुता अेर आरम्भिक मध्ययुगीन प्रतीकात्मक, निर्बिकल्पलता के मध्य में सन्तुलित समन्वय है। गुप्त–काल से पूर्व कुषाण–काल में भारत की मूर्तिकला यवन, यूनानी–शैली से प्रभावित थी, किन्तु गुप्तकाल में भारतीय मूर्तिकला ने धीरे–धीरे यवन प्रभाव से मुक्त होकर पूर्णतया भारतीय परिवेष धारण कर लिया था। गुप्त–युगीन मूर्तिकला भावपूर्ण ओजस्विता अथवा आध्यात्मिक प्रभावोत्पादकता, सहज प्राकृतिक, अंग–सौष्ठवता, कलात्मक सुन्दरता तथा षिल्पीय कौषल की निपुणता में अनुपम अंग है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

गुप्तोत्तर मूर्तीकला की विषेषता उसका पूर्णतया भारतीय होने के साथ ही नग्नता के स्थान पर संयमित सौन्दर्य का प्रदर्षन है। इसी कारण कुषाणकालीन बारीक वस्त्रों के स्थान पर गुप्त मूर्तियों को मोटे वस्त्र पहने दिखाया गया है।

गुप्तोत्तर काल की बनी मूर्तियाँ सर्वाधिक सारनाथ से प्राप्त हुई है, जिससे ऐसा अनुमान होता है कि सारनाथ मूर्तिकला का प्रमुख केन्द्र था। सारनाथ के अतिरिक्त मथुरा, पाटलिपुत्र भी मूर्तीकला के केन्द्र थे। गुप्त सम्राटों के धर्म–सहिष्णु नीति के कारण गुप्तकाल में विभिन्न धर्मों से सम्बधित मूर्तियों का निर्माण हुआ।

डॉ0 वी एस अग्रवाल ने लिखा है कि चाक्षुष रूप और आन्तरिक भावों का सम्न्वय इस युग की बुद्ध मूर्तियों में जितने अच्छे ढ़ंग से व्यक्त हुआ है उतना और कहीं नहीं हुआ। गुप्तकालीन महात्मा बुद्ध की प्रमुख मूर्तियां–सारनाथ की बैठी हुई मूर्ती, मथुरा की उत्थित बुद्ध की मूर्ती तथा सुल्तानपुर की तांबे की बनी 7/2 फुट उंची मूर्ती है।

सारनाथ से प्राप्त धर्मचक्र मुद्रा में महात्मा बुद्ध की मूर्ती विषिष्ट भारतीय कला का सर्वोत्तम प्रतीक है। इसकी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति, सौम्य स्मित, प्रषान्त ध्यानमग्न मुद्रा भारतीय कला की उच्चतम सफलता का प्रतीक है। उनके मुखमण्डलपर कठोर अनुषासन के साथ स्नेह सन्तुलन, करूणा, आत्मविष्वास और आध्यात्मिक आन्नद के भाव है। स्मिथ जी ने भी सारनाथ से प्राप्त इस बुद्ध मूर्ती की अत्यन्त प्रषंसा की है। स्मिथ के ही शब्दों में ''गुप्तकालीन बुद्ध गान्धार–षैली से पूर्णरूप से स्वतंत्र है। यह अपने आध्यात्मिक विचारों के साथ पूर्ण संवेदना रखते हुए मूर्ती निर्माण की विषुद्ध भारतीय प्रतिमा की चरम परिणति को प्रकट करता है।''

गुप्तोत्तर काल में षिवजी की दो प्रकार की मूर्तियों का निर्माण किया गया। प्रथम प्रकार की मूर्तियों में षिव का एक ही मुख दिखाया गया है। इस प्रकार का उदाहरण खोह से प्राप्त षिव मूर्ति है। द्वितीय प्रकार की मूर्तीयों में षिव के चार मुख दिखाए गए है, जिसका उदाहरण करमदण्डा से प्राप्त षिव–मूर्ती है।

गुप्तोत्तर कालीन प्रारम्भिक शासक वैष्णव धर्मावली थे, अतः इस युग में भगवान विष्णु की अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया। देवगढ़ के विष्णु मंदिर में भगवान विष्णु को शेषनाग पर लेटे हुए तथा लक्ष्मी को उनके पांव दबाते दिखाया गया है। विष्णु की मूर्ति के उपरी भाग में अनेक देवताओं की मूर्ति बनी हुई है। विष्णु की नाभि से प्रस्फुटित कमल पर जीन सिर वाले ब्रह्मा की मूर्ति है जो बाए हाथ से कमण्डल लिए हुए है। दाहिने ओर इन्द्र और कार्तिकीय ऐरावत व मयूर पर सवार हैं तथा बाई ओर षिव–पार्वती हैं। इस मूर्ति को भोगाषन–मूर्ति कहा जाता है। मूर्तिकला का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।

इसके अतिरिक्त, उदयगिरि–गुहा में विष्णु के बाराह अवतार, चतुर्भुज मुकुटधारी विष्णु व महिषमर्दिनी दुर्गा की मूर्ति प्राप्त हुई है।

गुप्तोत्तर काल में जैन–मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। कुमारगुप्त के शासनकाल की वर्द्धमान महावीर की पद्मासन मुद्रा में मूर्ति प्राप्त हुई है। स्कन्दगुप्त के शासनकाल में भी कहोम में एक तीर्थकर की मूर्ति की स्थापना की गई थी।

गुप्तोत्तर काल में हिन्दु देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण किया गया। इस युग मे भी राम, कृष्ण, सुदामा, रूक्मणी, आदि की मूर्तियाँ मिलती है। देवगढ़ के मंदिर में भगवान राम के जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं को उत्कीर्ण किया गया ळें

भारतीय कला में मृण्मयी–मूर्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इनसे तत्कालीन लोक कला व लोक जीवन पर प्रकाष पड़ता है। गुप्त काल में मिट्टी व ईटों के चूर्ण से देवी–देवताओं व मनुष्यों की मूर्तियों का निर्माण किया गया। सारनाथ संग्राहालय में महात्मा बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं वाली मूर्तियों सुरक्षित है। गुप्तकाल की षिव–पार्वती की एक मृण्मयी मूर्ति भटा से प्राप्त हुई है। स्त्री–पुरूषों की अनेक मूर्तियॉ भी मिट्टी के सुन्दर खिलौने के रूप में भी बनते थे जिन पर चित्रकारी द्वारा आंख, केष, वस्त्र, आदि बनाकर उन्हें सुन्दर बनाया जाता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्त युग में मूर्तिकला की अत्यधिक उन्नति हुई। गुप्तकालीन मूर्तियों में आध्यात्मिक शान्ति और आन्तरिक शान्ति की छटा व्याप्त है। मूर्तियों को देखने से आंखों की तृप्ति के साथ आन्तरिक सुख और सन्तोष भी प्राप्त होता है। गुप्त–मूर्तियां हमें आन्तरिक सौन्दर्य की ओर आकर्षित करती है। इन मूर्तियों में आधत्मिकता और बौद्धिकता के सुन्दर सामंजस्य के साथ–साथ आध्यात्मिक भावनाओं की सचेष्टता स्पष्ट अभिव्यक्त है।

गुप्तकाल में वास्तु एवं मूर्तिकला के समान ही चित्रकला भी अपनी पूर्णता तक पहुँची। प्रो0 वासुदेवषरण अग्रवाल ने लिखा है, ''गुप्त–युग में चित्रकला की षिक्षा प्रत्येक नागरिक के सांस्कृतिक जीवन का एक आवष्यक अंग थी तथा प्रत्येक सुसंस्कृत स्त्री व पुरूष इस युग में उनसे श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नषील था।

गुप्तोत्तर कालीन चित्रकला का उत्कृष्ट प्रदर्शन अजन्ता एवं बाघ की गुहाओं के रूप में किया गया है।

अजन्ता की गुहाएं औरंगाबाद से लगभग 100 कि. मी. दूर स्थित हैं। अजन्ता गुफाओं से दो किमी. पर अजिण्ठा नामक ग्राम है, जिसका उच्चारण अजिष्ठा है। इस ग्राम के नाम पर ही इन गुहाओं का नाम अजन्ता पड़ा।

अजन्ता में छोटी–बड़ी कुल 29 गुहाएं हैं जो दो प्रकार की है– स्तूप गुहा व विहार गुहा। स्तूप गुहा में पूजा की जाती की तथा गुहा भिक्षुओं के निवास स्थान का कार्य

RRIJM 2015, All Rights Reserved

करती थी। प्रारंभ में सभी 29 गुहाओं में चित्र थे किन्तु अब मात्र 6 गुहाओं में चित्र बचे है, शेष नष्ट हो गए हैं। ये चित्र प्रथम, द्वितीय, नवीं, दषवीं, व सोलहवीं गुफाओं में मिलते है। इन गुहाओं की गणना पूर्व से पष्चिम की ओर की गई है। इन गुहा–चित्रों में से सोलहवीं व सत्रहवीं गुहाओं के चित्र ही गुप्त काल के हैं। यद्यपि अजन्ता वाकाटक–साम्राज्य में स्थित था, किन्तु गुप्त इतने सुसंस्कृत थे और इनकी कलाभिरूचि उंची और सक्रिय थी उस काल की समूची कलाकृति पर गुप्त प्रभाव है, इसी कारण उसे गुप्तकालीन माना जाता है।

वैसे तो अजन्ता की गुहाओं के मूर्तियों से सुसज्जित प्रवेष द्वार ही पर्याप्त आष्चर्यजनक हैं, परन्तु इन गुफाओं के आकर्षण का कारण इनकी भीतरी दीवारों पर की गई भित्ति–चित्रकारी है जो प्र्याप्त नष्ट हो जाने के बाद भी चमकदार दिखाई पड़ती है। अजनता की प्रत्येक गुहा में मूर्तियां, स्तम्भ तथा द्वार काटकर भित्तियों पर चित्रकारी की गई है। इस प्रकार अजनता की गुफाएं वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला का संगम हैं।

अजन्ता की गुहाओं में चित्र बनाने से पूर्व जिस स्थान पर चित्रण करना होता था उसे खुरदरा बनाया जाता था तथा उस पर गोबर, पत्थर का चूरा व धान की भूसी मिले हुए गारे का लेप किया जाता था। तत्पष्चात उस पर चूने की पतली सतह चढ़ाई जाती थी। इस प्रकार तैयार स्थान पर चित्र बनाए जाते थे।

अजन्ता के चित्रों की शैली की विषेषताओं का उल्लेख करते हुए राम कृष्णदास ने लिखा है कि इन चित्रों की रूपरेखा बहुत जोरदार एवं लोचदार है। उसमें भाव के साथ–साथ वास्तविकता है। रंगों की योजना प्रसंगानुकूल, बड़ी आढय और चित्ताकर्षक है, कहीं फीके या बेदम रंग नहीं लगे है। आक्सरहाँ चित्रों के भेद और भाव दिखाने में चित्रकारों ने कमाल किया है। इस काल में ओज और सौकुमार्य दोनों ही की, समान सफलता में अभिव्यक्ति हुई हैं सबसे विषिष्ट बात यह है कि इसमें कहीं भी अतिरिक्त अलंकरण छू भी नहीं गया हैं यद्यपि इन चित्रों का विषय सर्वथा धार्मिक है फिर भी जीवन और समाज के सभी अंगों पहलुओं से इनकी इतनी समानता है कि वे सभी पूर्ण सफलता से अंकित हुए हैं।

16वीं गुफा के अनुक चित्र अब तक नष्ट हो चुके हैं। इस गुफा की दाहिनी भित्ति पर सुजाता की कहानी है। इसमें गायों का सुन्दर चित्रण है तथा भवन मे गुप्तकालीन प्रस्तर षिल्प जैसी ज्यामितिक तरह से जालियां बनी हुई हैं। इस गुफा की बाईं भित्ति पर उन चार दृष्यो (बृद्ध, शव, वृषण ताड़न, बैरागी) का चित्रण किया गया है, जिनसे प्रभावित होकर महात्मा बुद्ध ने सन्यास ग्रहण किया था। गुफा में एक स्थान पर मायादेवी के स्वप्न को भी चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त, अनेक जातक कथाओं के अनेक चित्र भी इस गुफा में बने है। लुम्बनी वाटिका के दृष्य भी सुन्दरता एवं सजीवता से बनाए गए है। इस गुफा के दो चित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रथम, गहरी राम में महात्मा बुद्ध गृह–त्याग रहे हैं तथा यषोधरा व पुत्र राहुल सोया हुआ है। पास ही सेविकाएं भी सोयी हुई हैं। इस चित्र में बुद्ध को इस दृष्य पर एक निगाह डालते हुए दिखाया गया है। इस दृष्टि में मोह–ममता नहीं वरन् त्याग की भावना है। इस चित्र की प्रषंसा करते हुए सिस्टर निवेदिता ने लिखा है, ''यह चित्र सम्भवतः महात्मा बुद्ध का, विष्व द्वारा देखा जाने वाला सबसे बड़ा कल्पनात्मक प्रदूषण है, ऐसी अद्वितीय कल्पना शायद ही कभी पुनः की जा सके।'' इस गुफा का दूसरा प्रमुख चित्र मरणासन्न राजकुमारी का है। इस चित्र में राजकुमारी उंचे आसन पर लेटी है, तथा एक दासी उसे सहारा देकर उठाए हुए है। पीछे अन्य एक दासी राजकुमारी को देख रही है। इस राजकुमारी के चेहरे पर अपार पीड़ा के भाव हैं ताकि समीप बैठे व्यक्तियों के मुख पर वेदना है। इस चित्र की विद्वानों ने अत्यंत प्रशंसा की है। फर्गूसन ने इस चित्र के विषय में लिखा है, ''करूणा और विचारों की दृष्टि से और अपनी कथा कहने के ठीक ढंग की दृष्टि से विचार में कला के इतिहास में इससे श्रेष्ठ चित्र बनाना संभंव नहीं है।'' ग्रिफिथ ने भी इस चित्र को श्रेष्ठतम चित्र माना है। दया और करूणा के भाव को प्रदर्शित करने के दृष्टिकोण से यह चित्र एक सफल अभिव्यक्ति है।

17वी. गुफा के चित्र और भी सुन्दर है। राय कृष्णदास ने लिखा है, ''अजन्ता की 17वी. गुफा के चित्र एक से बढ़कर एक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे चतुर चित्रकारों ने इसी गुफा में अपनी कला दिखाई है।'' इस गुफा में भी जातक कथाओं के अनेक चित्र हैं किन्तु प्रमुख चित्रों में एक राहुल–समर्पण नामक भव्य चित्र है। इस चित्र में यषोधरा को अपने पुत्र राहुल को महात्मा बुद्ध को समर्पित करते हुए दिखाया गया है। इस चित्र में यषोधरा की विवषता, बुद्ध के प्रति समर्पित भाव ताकि राहुल के आत्म समर्पण के भाव का अत्यन्त सजीवता से अभिव्यक्त किया गया है। अयी गुफा के एक अन्य चित्र में एक राजकीय जुलूस भी चित्रित किया गया है जिसमें सजे–धजे स्त्री–पुरूष दिखाए गए हैं इसी गुफा का एक अन्य चित्र महाहंस जातक पर आधारित है, इसमें एक राजा को स्वर्णहसं से बात करते हुए दिखाया गया है। बस चित्र की भी सिस्टर निवेदिता ने अत्यधिक प्रषंसा की है।

अजन्ता की कला का चित्रकला के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। कला की वास्तविकता के अनुकूल भावों को इस हृदयंगम कर लेता है। इसी कारण वासुदेव उपाध्याय ने अजन्ता के चित्रों को तूलिका से अभिव्यंजित मनोरम कविताएं कहा है। अजन्ता कला की प्रशंसा करते हुए श्रीमति ग्रेबोस्का ने लिखा है, ''अजन्ता की कला भारत

RRIJM 2015, All Rights Reserved

की सर्वश्रेष्ठ कला है, चित्रों की सुन्दरता अलौकिक है तथा ये चित्र भारतीय चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने हैं।''

बाघ, ग्वालियर के समीप एक छोटा सा ग्राम है जहां विन्ध्य की पहाड़ियों में 9 गुफाएं हैं। इन गुफाओं की दीवारों पर चित्र बने हुए हैं जो कि गुप्तकालीन है। इनमें से प्रसिद्ध चित्र चौथी एवं पांचवीं गुफा के है। सबसे प्रमुख चित्र में एक संगीत नृत्य का दृष्य है, जिसमें अनेक महिलाओं को अच्छे वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है। इस नृत्य का नायक एक पुरूष है। एक अन्य दृष्य में कुछ पुरूष शास्त्रर्थ करते हए दिखाए गए है। बाघ के चित्रों का निर्माण एक ही समय पर हुआ, अतः एनमें समष्टि का भाव है। अजन्ता के चित्र अलग–अलग समय पर बने होने के कारण उनमें इस विषेषता का अभाव है। अतः बाघ के चित्र इस दृष्टि से अजन्ता से अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त अजन्ता के चित्रों के मुख्यतः धार्मिक विषयों पर आधारित हैं किन्तु बाघ के चित्र लौकिक जीवन से सम्बन्धित हैं, जिससे तत्कालीन वेष–भूषा, केष–विन्यास तथा अलंकार–प्रसाधन विषय में इन चित्रों से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से बाघ की चित्रकला का विषेष महत्व है। मार्षल ने लिखा है कि यद्यपि बाघ के चित्र लौकिक जीवन से लिए गए हैं किन्तु वे उन अव्यक्त भावों को भी स्पष्ट करते हैं, जिनको प्रकट करना उच्च चित्रकला का ध्येय है। वासुदेव उपाध्याय ने भी बाघ–चित्रकला की अत्यन्त प्रशंसा की है। उनके शब्दों में, ''बाघ की चित्रकला भारतीय अतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बाघ के चित्र भाव–प्रधान हैं, उनमें भाव–व्यंजना की एक अजीब शक्ति है। चित्रकार के हृदय के स्वर्गीय आनन्द तथा भावों की लहर बाघ के चित्रों में लहराती मिलती है। इन चित्रों में औचित्य का विषेष ध्यान रखा गया है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्त काल में कला के प्रत्येक आयाम की उल्लेखनीय उन्नति हुई। वास्तुकला, मूर्तिकला व चित्रकला के अद्‌भुत नमूनों ने गुप्त कला को सदैव के लिए अमरत्व प्रदान किया तथा उसकों स्वर्ण–युग बनाने में योगदान दिया। गुप्त कला की विषेषताओं–लालित्व, अभिव्यंजना की नैसर्गिकता व आध्यात्मिक प्रयोजन के पारस्परिक समन्वय ने गुप्तकला को एक व्यक्तित्व प्रदान किया। गुप्तकलाकार ने जो कुछ बनाया वह पूर्णरूपेण स्वाभाविक प्रतिक होता है। यह काम कारीगर की दक्षता का फल नहीं, एक सच्चे कलाकार की विवेकमयी रूचि का परिणाम है। गुप्त कलाकार ने जिस वस्तु को हाथ लगाया उसे अत्यन्त कलात्मक बना दिया।

अतः इसमें सन्देह नहीं है कि गुप्त–कला भारतीय कला के सर्वश्रेष्ठ रूप का प्रतिनिधि है। भारत में यह इतनी प्राणवान व प्रभविष्णु थी कि सहज ही यह विदेषों में फैल गई।

भारतीय समाज का जो ढांचा वैदिक युग में बना, वह कतिपय परिवर्तनों के साथ आज तक विद्यमान है। गुप्तकाल के सामाजिक जीवन का अपना कोई अलग स्वरूप है ऐसा कहना कठिन है। इतना ही कहा जा सकता है कि वैदिक युग में समाज का प्रमुख रूप से जो ग्रामीण स्वरूप था, वह मौर्यकाल में नागरिकता की ओर उन्मुख हुआ था, गुप्त काल में ग्रामीण और नागरिक दोनों का ही एक समन्वित विकसित रूप देखने को मिलता है।

वैदिक युग में ही भारतीय समाज चार वर्णो ब्राह्मण, क्षैत्रिय, वैष्य व शूद्रों में–बँट गया था। गुप्तकाल में भी समाज इन्हीं चार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मणों का समाज मं सर्वोच्च स्थान था तथा उनका कार्य अध्ययन, विवरणों से यह मूल्यांकन सुस्पष्ट होता है कि गुप्तोत्तर कालीन सांस्कृतिक विकास एक धरोहर के रूप में इतिहास में स्थान बनाई है और अन्य परवर्ती साम्राज्यों के लिए प्रेरणीय स्रोत का काम किया विदेषी यात्री फाह्यान के वर्णन से भी ज्ञात होता है कि जैन मंदिर प्रमुख नगरों में एक थे और वे बौद्ध विहारों के समीप था। इतना ही नहीं गुप्तोत्तर काल के सांस्कृतिक विकास की प्रशंसा का भी अभितेरत में भी वर्णत है कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में भद्र नामक पाँच तीर्थकरों की मूर्तियों स्थापना कराए जाने का उल्लेख मिलता है। साथ ही गुप्तकाल में जैन रचना की गई जिनमें प्रमुख सर्वनदी कृत लोक विभाग और आचार्य सिद्धसेन द्वारा रचित न्यायवार्ता है। तभी तो इसे सांस्कृतिक उत्कर्ष का युग कहा गया है। हिन्दु धर्म के पूर्णरुपेन विकास के साथ ही बौद्ध व जैन संस्कृति की भी भरपूर उन्नति हुई। नाना प्रकार के संस्कृति का गुप्तोत्तर युग में विकास निःसंदेह गुप्तोत्तर शासकों की सांस्कृतिक सहिष्णु नीति का परिचायक मानी जाती है जिसे इतिहास कभी भूल नहीं पाएगी।

संदर्भ सूची–

(1) भारत का इतिहास–लेखक–रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2000
(2) प्राचीन भारत का इतिहास– संपादक– द्विजेनद्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन, श्रीमाली–2001
(3) गुप्ता पी0 एल0 – गुप्त साम्राज्य
(4) उपाध्याय भगवत शरण – गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास
(5) पाण्डेय, वी0 सी0, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

RRIJM 2015, All Rights Reserved